श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता चतुर्थ अध्याय(3.24)

वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

तृतीयः स्कंधः

॥ अथ चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः ॥

मैत्रेय उवाच

निर्वेदवादिनीमेवं(म्), मनोर्दुहितरं(म्) मुनिः ।
दयालुः(श्) शालिनीमाह, शुक्लाभिव्याहृतं(म्) स्मरन् ॥ 1॥

श्रीमैत्रेयजी कहते है- उत्तम गुणोंसे सुशोभित मनुकुमारी देवहूतिने जब ऐसी वैराग्ययुक्त बातें कहीं, तब कृपालु कर्दम मुनिको भगवान् विष्णुके कथनका स्मरण हो आया और उन्होंने उससे कहा ।

ऋषिरुवाच

मा खिदो राजपुत्रीत्थ-मात्मानं(म्) प्रत्यनिन्दिते ।
भगवां(म्)स्तेऽक्षरो गर्भ-मदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥ 2॥

कर्दमजी बोले- दोषरहित राजकुमारी तुम अपने विषयमें इस प्रकार खेद न करो; तुम्हारे गर्भमे अविनाशी भगवान् का विष्णु शीघ्र ही पधारेंगे ।

धृतव्रतासि भद्रं(न्) ते, दमेन नियमेन च ।

तपोद्रविणदानैश्च, श्रद्धया चेश्वरं(म्) भज ॥ 3॥

प्रिये ! तुमने अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन किया है, अतः तुम्हारा कल्याण होगा। अब तुम संयम, नियम, तप और दानादि करती हुई श्रद्धापूर्वक भगवान्का भजन करो ।

स त्वयाऽऽराधितः(श्) शुक्लो, वितन्वन्मामकं(यँ) यशः ।

छेत्ता ते हृदयग्रन्थि-मौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ 4॥

इस प्रकार आराधना करनेपर श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर मेरा यश बढ़ावेंगे और ब्रह्मज्ञानका उपदेश करके तुम्हारे हृदयकी अहङ्कारमयी ग्रन्थिका छेदन करेंगे ।

मैत्रेय उवाच

देवहूत्यपि सन्देशं(ङ्), गौरवेण प्रजापतेः ।

सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं(ङ्), कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥ 5॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी ! प्रजापति कर्दमके आदेशमें गौरव-बुद्धि होनेसे देवहूतिने उसपर पूर्ण विश्वास किया और वह निर्विकार, जगद्गुरु भगवान् श्रीपुरुषोत्तमकी आराधना करने लगी ।

तस्यां(म्) बहुतिथे काले, भगवान्मधुसूदनः ।

कार्दमं(वँ) वीर्यमापन्नो, जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ 6॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर भगवान् मधुसूदन कर्दमजीके वीर्यका आश्रय ले उसके गर्भसे इस प्रकार प्रकट हुए, जैसे काष्ठ से अग्नि ।

अवादयं(म्)स्तदा व्योम्नि, वादित्राणि घनाघनाः ।

गायन्ति तं(म्) स्म गन्धर्वा, नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥ 7॥

उस समय आकाशमे मेघ जल बरसाते हुए गरज-गरजकर बाजे बजाने लगे, गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दित होकर नाचने लगीं ।

पेतुः(स्) सुमनसो दिव्याः(ख्), खेचरैरपवर्जिताः ।

प्रसेदुश्च दिशः(स्) सर्वा, अम्भां(म्)सि च मनां(म्)सि च ॥ 8॥

आकाशसे देवताओंके बरसाये हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी; सब दिशाओंमें आनन्द छा गया, जलाशयोंका जल निर्मल हो गया और सभी जीवोंके मन प्रसन्न हो गये ।

तत्कर्दमाश्रमपदं(म्), सरस्वत्या परिश्रितम् ।

स्वयम्भूः(स्) साकमृषिभिर्-मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ 9॥

इसी समय सरस्वती नदीसे घिरे हुए कर्दमजीके उस आश्रम में मरोधि आदि मुनियोंके सहित श्रीब्रह्माजी आये ।

भगवन्तं(म्) परं(म्) ब्रह्म, सत्त्वेनां(म्)शेन शत्रुहन् ।

तत्त्वसङ्ख्यानविज्ञप्त्यै, जातं(वँ) विद्वानजः(स्) स्वराट् ॥ 10॥

शत्रुदमन विदुरजी ! स्वतःसिद्ध ज्ञानसे सम्पन्न अजन्मा ब्रह्माजीको यह मालूम हो गया था कि साक्षात् परब्रह्म भगवान् विष्णु सांख्यशास्त्र का उपदेश करनेके लिये अपने विशुद्ध सत्त्वमय अंशसे अवतीर्ण हुए हैं ।

सभाजयन् विशुद्धेन, चेतसा तच्चिकीर्षितम् ।

प्रहृष्यमाणैरसुभिः(ख्), कर्दमं(ञ्) चेदमभ्यधात् ॥ 11॥

अतः भगवान् जिस कार्यको करना चाहते थे, उसका उन्होंने विशुद्ध चित्तसे अनुमोदन एवं आदर किया और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे प्रसन्नता प्रकट करते हुए कर्दमजीसे इस प्रकार कहा ।

ब्रह्मोवाच

त्वया मेऽपचितिस्तात, कल्पिता निर्व्यलीकतः ।

यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं(म्), भवान्मानद मानयन् ॥ 12॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—प्रिय कर्दम ! तुम दूसरोंको मान देनेवाले हो। तुमने मेरा सम्मान करते हुए जो मेरी आज्ञाका पालन किया है, इससे तुम्हारे द्वारा निष्कपट भावसे मेरी पूजा सम्पन्न हुई है ।

एतावत्येव शुश्रूषा, कार्या पितरि पुत्रकैः ।

बाढमित्यनुमन्येत, गौरवेण गुरोर्वचः ॥ 13॥

पुत्रोंको अपने पिताकी सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिये कि 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर आदरपूर्वक उनके आदेशको स्वीकार करें ।

इमा दुहितरः(स्) सभ्य, तव वत्स सुमध्यमाः ।

सर्गमेतं(म्) प्रभावैः(स्) स्वैर्-बृं(म्)हयिष्यन्त्यनेकधा ॥ 14॥

बेटा ! तुम सभ्य हो, तुम्हारी ये सुन्दरी कन्याएँ अपने वंशद्वारा इस सृष्टिको अनेक प्रकारसे बढ़ावेंगी ।

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो, यथाशीलं(यँ) यथारुचि ।

आत्मजाः(फ्) परिदेह्यद्य, विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ 15॥

अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरोंको इनके स्वभाव और रुचिके अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पित करो और संसारमें अपना सुयश फैलाओ ।

वेदाहमाद्यं पुरुष-मवतीर्णं(म्) स्वमायया ।

भूतानां(म्) शेवधिं(न्) देहं(म्),बिभ्राणं(ङ्) कपिलं(म्) मुने ॥ 16॥

मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी निधि हैं—उनके अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुरुष श्रीनारायण ही अपनी योगमायासे कपिलके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ।

ज्ञानविज्ञानयोगेन, कर्मणामुद्धरन् जटाः ।

हिरण्यकेशः(फ्) पद्माक्षः(फ्), पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ 17॥

एष मानवि ते गर्भं(म्), प्रविष्टः(ख्) कैटभार्दनः ।

अविद्यासं(म्)शयग्रन्थिं(ञ्), छित्त्वा गां(वँ) विचरिष्यति ॥ 18॥

फिर देवहूतिसे बोले-राजकुमारी सुनहरे बाल,कमल-जैसे विशाल नेत्र और कमलाङ्कित चरणकमलोंवाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेवाले साक्षात् श्रीहरिने ही, ज्ञान-विज्ञानद्वारा कर्मोंकी वासनाओंका मूलोच्छेदन करनेके लिये तेरे गर्भ प्रवेश किया है। ये अविद्याजनित मोहकी ग्रन्थियोंको काटकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरेंगे ।

अयं(म्) सिद्धगणाधीशः(स्), साङ्ख्याचार्यैः(स्) सुसम्मतः ।

लोके कपिल इत्याख्यां(ङ्), गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥ 19॥

ये सिद्धगणोंके स्वामी और सांख्याचार्यों के भी माननीय होंगे। लोकमें तेरी कीर्तिका विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे ।

मैत्रेय उवाच

तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा, कुमारैः(स्) सहनारदः ।

हं(म्)सो हं(म्)सेन यानेन, त्रिधामपरमं(यँ) ययौ ॥ 20॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं विदुरी जगत् की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उन दोनोंको इस प्रकार आश्वासन देकर नारद और सनकादिको साथ ले, हंसपर चढ़कर ब्रहालोकको चले गये ।

गते शतधृतौ क्षत्तः(ख्), कर्दमस्तेन चोदितः ।

यथोदितं(म्) स्वदुहितॄः(फ्), प्रादाद्विश्वसृजां(न्) ततः ॥ 21॥

ब्रह्माजीके चले जानेपर कर्दमजीने उनके आज्ञानुसार मरीचि आदि प्रजापतियोंके साथ अपनी कन्याओंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया ।

मरीचये कलां(म्) प्रादा-दनसूयामथात्रये ।

श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्-पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ 22॥

उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको और रवि पुलस्त्यको समर्पित की ।

पुलहाय गतिं(यँ) युक्तां(ङ्),क्रतवे च क्रियां(म्) सतीम् ।

ख्यातिं(ञ्) च भृगवेऽयच्छद्-वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ 23॥

पुलहको उनके अनुरूप गति नामकी कन्या दी, क्रतुके साथ परम साध्वी क्रियाका विवाह किया, भृगुजीको ख्याति और वसिष्ठजीको अरुन्धती समर्पित की ।

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं(यँ), यया यज्ञो वितन्यते ।

विप्रर्षभान् कृतोद्वाहान्, सदारान् समलालयत् ॥ 24॥

अथर्वा ऋषिको शान्ति नामकी कन्या दी, जिससे यज्ञकर्मका विस्तार किया जाता है। कर्दमजीने उन विवाहित ऋषियोंका उनकी पत्नियोंके सहित खूब सत्कार किया ।

ततस्त ऋषयः(ह्) क्षत्तः(ख्), कृतदारा निमन्त्र्य तम् ।

प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः(स्), स्वं(म्) स्वमाश्रममण्डलम् ॥ 25॥

विदुरजी ! इस प्रकार विवाह हो जानेपर वे सब ऋषि कर्दमजीकी आज्ञा ले अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ।

स चावतीर्णं(न्) त्रियुग-माज्ञाय विबुधर्षभम् ।

विविक्त उपसङ्गम्य, प्रणम्य समभाषत ॥ 26॥

कर्दमजीने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव श्रीहरिने ही अवतार लिया है, तो वे एकान्तमें उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे ।

अहो पापच्यमानानां(न्), निरये स्वैरमङ्गलैः ।

कालेन भूयसा नूनं(म्), प्रसीदन्तीह देवताः ॥ 27॥

अहो! अपने पापकर्मों के कारण इस दुःखमय संसारमें नाना प्रकारसे पीडित होते हुए पुरुषोंपर देवगण तो बहुत काल बीतनेपर प्रसन्न होते हैं ।

बहुजन्मविपक्वेन, सम्यग्योगसमाधिना ।

द्रष्टुं(यँ) यतन्ते यतयः(श्), शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ 28॥

स एव भगवानद्य, हेलनं(न्) नगणय्य नः ।

गृहेषु जातो ग्राम्याणां(यँ), यः(स्) स्वानां(म्) पक्षपोषणः ॥ 29॥

किन्तु जिनके स्वरूपको योगिजन अनेकों जन्मों के साधनसे सिद्ध हुई सुदृढ़ समाधिके द्वारा एकान्तमें देखनेका प्रयत्न करते हैं, अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले वे ही श्रीहरि हम विषय लोलुपोंके द्वारा होनेवाली अपनी अवज्ञाका कुछ भी विचार न कर आज हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं ।

स्वीयं(वँ) वाक्यमृतं(ङ्) कर्तु-मवतीर्णोऽसि मे गृहे ।

चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं(म्), भक्तानां(म्) मानवर्धनः ॥ 30॥

आप वास्तवमें अपने भक्तोंका मान बढ़ानेवाले हैं। आपने अपने वचनोको सत्य करने और सांख्ययोगका उपदेश करनेके लिये ही मेरे यहाँ अवतार लिया है ।

तान्येव तेऽभिरूपाणि, रूपाणि भगवं(म्)स्तव ।

यानि यानि च रोचन्ते, स्वजनानामरूपिणः ॥ 31॥

भगवन्। आप प्राकृतरूपसे रहित हैं, आपके जो चतुर्भुज आदि अलौकिक रूप हैं, वे ही आपके योग्य है तथा जो मनुष्य सदृश रूप आपके भक्तोंको प्रिय लगते हैं, वे भी आपको रुचिकर प्रतीत होते है ।

त्वां(म्) सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा

सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।

ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-

वीर्यश्रिया पूर्त्तमहं(म्) प्रपद्ये ॥ 32॥

आपका पाद पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे विद्वानोंद्वारा सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं। मैं आपकी शरण में हूँ ।

परं(म्) प्रधानं(म्) पुरुषं(म्) महान्तं(ङ्),

कालं(ङ्) कविं(न्) त्रिवृतं(लँ) लोकपालम् ।

आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं(म्)

स्वच्छन्दशक्तिं(ङ्) कपिलं(म्) प्रपद्ये ॥ 33॥

भगवन्! आप परब्रह्म है; सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं; प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, त्रिविध अहङ्कार, समस्त लोक एवं लोकपालोके रूपमें आप ही प्रकट है तथा आप सर्वज्ञ परमात्मा ही इस सारे प्रपञ्चको चेतनशक्तिके द्वारा अपनेमें लीन कर लेते हैं। अतः इन सबसे परे भी आप ही हैं। मैं आप भगवान् कपिलकी शरण लेता हूँ ।

आ स्माभिपृच्छेऽद्य पतिं(म्) प्रजानां(न्)

त्वयावतीर्णार्ण उताप्तकामः ।

परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं(ञ्)

चरिष्ये त्वां(म्) हृदि युञ्जन् विशोकः ॥ 34॥

प्रभो ! आपकी कृपासे मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया हूँ। और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। अब मैं संन्यास-मार्गको ग्रहणकर आपका चिन्तन करते हुए शोकरहित होकर विचरूंगा। आप समस्त प्रजाओंके स्वामी हैं, अतएव इसके लिये मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ ।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रोक्तं(म्) हि लोकस्य, प्रमाणं(म्) सत्यलौकिके ।

अथाजनि मया तुभ्यं(यँ), यदवोचमृतं(म्) मुने ॥ 35॥

श्रीभगवान् ने कहा- मुने! वैदिक और लौकिक सभी कर्मों में संसारके लिये मेरा कथन ही प्रमाण है। इसलिये मैंने जो तुमसे कहा था कि 'मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा', उसे सत्य करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है ।

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्, मुमुक्षूणां(न्) दुराशयात् ।

प्रसङ्ख्यानाय तत्त्वानां(म्), सम्मतायात्मदर्शने ॥ 36॥

इस लोकमें मेरा यह जन्म लिङ्गशरीरसे मुक्त होनेकी इच्छावाले मुनियोंके लिये आत्मदर्शनमें उपयोगी प्रकृति आदि तत्वका विवेचन करनेके लिये ही हुआ है ।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो, नष्टः(ख्) कालेन भूयसा ।

तं(म्) प्रवर्तयितुं(न्) देह-मिमं(वँ) विद्धि मया भृतम् ॥ 37॥

आत्मज्ञानका यह सूक्ष्म मार्ग बहुत समय से लुप्त हो गया है। इसे फिरसे प्रवर्तित करनेके लिये ही मैंने यह शरीर ग्रहण किया है ऐसा जानो ।

गच्छ कामं(म्) मयाऽऽपृष्टो, मयि सन्न्यस्तकर्मणा ।

जित्वा सुदुर्जयं(म्) मृत्यु-ममृतत्वाय मां(म्) भज ॥ 38॥

मुने! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो ।

मामात्मानं(म्) स्वयञ्ज्योतिः(स्), सर्वभूतगुहाशयम् ।

आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य, विशोकोऽभयमृच्छसि ॥ 39॥

मैं स्वयंप्रकाश और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहनेवाला परमात्मा ही हूँ। अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तब सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे।

मात्र आध्यात्मिकीं(वँ) विद्यां(म्), शमनीं(म्) सर्वकर्मणाम् ।

वितरिष्ये यया चासौ, भयं(ञ्) चातितरिष्यति ॥ 40॥

माता देवहूतिको भी मैं सम्पूर्ण कर्मों से छुड़ानेवाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसाररूप भवसे पार हो जायगी ।

मैत्रेय उवाच

एवं(म्) समुदितस्तेन, कपिलेन प्रजापतिः ।

दक्षिणीकृत्य तं(म्) प्रीतो, वनमेव जगाम ह ॥ 41॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं- भगवान् कपिलके इस प्रकार कहनेपर प्रजापति कर्दमजी उनकी परिक्रमा कर प्रसन्नतापूर्वक वनको चले गये ।

व्रतं(म्) स आस्थितो मौन-मात्मैकशरणो मुनिः ।

निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणी-मनग्निरनिकेतनः ॥ 42॥

वहाँ अहिंसामय संन्यास धर्मका पालन करते हुए वे एकमात्र श्रीभगवान्‌की शरण हो गये तथा अग्नि और आश्रमका त्याग करके निःसङ्गभावसे पृथ्वीपर विचरने लगे ।

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो, यत्तत्सदसतः(फ्) परम् ।

गुणावभासे विगुण, एकभक्त्यानुभाविते ॥ 43॥

जो कार्यकारणसे अतीत है, सत्त्वादि गुणोंका प्रकाशक एवं निर्गुण है और अनन्य भक्तिसे ही प्रत्यक्ष होता है, उस परब्रह्ममें उन्होंने अपना मन लगा दिया ।

निरहङ्कृतिर्निर्ममश्च, निर्द्वन्द्वः(स्) समदृक् स्वदृक् ।

प्रत्यक्प्रशान्तधीर्धीरः(फ्), प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥ 44॥

वे अहंकार, ममता और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे छूटकर समदर्शी (भेददृष्टिसे रहित) हो, सबमें अपने आत्माको हो देखने लगे। उनको बुद्धि अन्तर्मुख एवं शान्त हो गयी। उस समय धीर कर्दमजी शान्त लहरोंवाले समुद्रके समान जान पड़ने लगे ।

वासुदेवे भगवति, सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ।

परेण भक्तिभावेन, लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥ 45॥

परम भक्तिभावके द्वारा सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ श्रीवासुदेवमें चित्त स्थिर हो जानेसे वे सारे बन्धनोंसे मुक्त हो गये ।

आत्मानं(म्) सर्वभूतेषु, भगवन्तमवस्थितम् ।

अपश्यत्सर्वभूतानि, भगवत्यपि चात्मनि ॥ 46॥

सम्पूर्ण भूतोंमें अपने आत्मा श्रीभगवान्‌को और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मस्वरूप श्रीहरिमें स्थित देखने लगे ।

इच्छाद्वेषविहीनेन, सर्वत्र समचेतसा ।

भगवद्भक्तियुक्तेन, प्राप्ता भागवती गतिः ॥ 47॥

इस प्रकार इच्छा और द्वेषसे रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्तिसे सम्पन्न होकर श्रीकर्दमजीने भगवान्‌का परमपद प्राप्त कर लिया ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) संहितायां(न्)

तृतीयस्कन्धे कापिलेये चतुर्विं(म्)शोऽध्यायः ॥